मैं नीरोग हूं या रोगी ?



लूई कूने

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला, पुष्प १७

मैं नीरोग हूं या रोगी?

जर्मनीके प्रसिद्ध जलचिकित्साके आविष्कर्त्ता

लुईकूनेकी

एक पुस्तिकाका स्वतन्त्र अनुवाद

अनुवादक

"एक लाभ प्राप्त"

प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।

तृतीय वार } १९८६ { मूल्य ।)
सजिल्द ।=)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया,
प्रोप्राइटर
हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता ।

मुद्रक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
वणिक् प्रेस,
१, सरकार लेन, कलकत्ता ।

प्रकाशकका निवेदन

प्रथम संस्करणपर

मालाके इस १७ वें पुष्पकी कोई सूचना पहले कहीं नहीं दी गई थी; अकस्मात् ही इसे प्रकाशित करनेका अवसर मिल गया।

थोड़ेमें इसके प्रकाशनका इतिहास भी सुन लीजिये। मैंने लूईकूने साहबके सिद्धान्तानुसार कई मित्रोंको जलचिकित्सा करते देखा सुना था, पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। एजेन्सीसे म० गांधीका "आरोग्यसाधन" निकलनेपर उस ओर अधिक ध्यान गया। मुझे शायद होश संभालनेके बादसे ही कब्जकी शिकायत बराबर ही रही। कई वर्ष पहले दवाइयां भी खाता रहा। उनसे निराश होकर भोजनमें कुछ सादगी—अबकी दशा देखते नाममात्रको—अख्तियार की, कुछ फल भी खाता रहा। पर फल कुछ न होता था। कोठेकी सफाईके लिए महीनेमें सात आठ बार डूश भी लेने लगा। इससे विशेष लाभ होते न देख, घर जाकर उपवास चिकित्सा आजमानेका इरादा किया। इसी बीचमें मेरे एक पुराने रोगी मित्र—जिनका अनुभव उन्हींकी ज़बानी आगे दिया गया है—देहरादूनसे जलचिकित्साका लाभ उठाकर आये। मैं तो अपनी दशासे ऊबा बैठा ही था, उनकी नीरोगताके हाल देख सुनकर उसी दिनसे मेहन और उदरस्नान आरम्भ कर दिये। भोजनके लिए जब उनसे यह सुना और कूने साहबकी पुस्तकमें पढ़ा कि पकाये हुए सभी भोजन कुछ न कुछ भारी होते हैं, भोजन अपने असली रूपमें बहुत जल्दी पचता और लाभदायक होता है, शीघ्र नीरोगताकी इच्छा रखनेवालोंको इसपर विशेष ध्यान रखना चाहिये, तब मैंने सोचा कि हफ्ते हफ्ते भरके उपवास रखनेके निश्चयसे तो यह कुछ कड़ी परीक्षा है ही नहीं। उसी दिनसे पके भोजनको प्रणाम किया, कच्चे गेहूं और ताजे फलों (ऋतु अनुसार) पर गुज़र करना आरम्भ कर दिया। नतीजा सुन

लीजिए। पांच ही छ दिनमें कब्ज़ कम हो चला। अभी दो महीने हुए हैं, यह आशा हो गई कि थोड़े ही दिनोंमें हमेशाके लिए इससे छुटकारा मिल जायगा। स्वास्थ्यमें विशेष उन्नति हुई है (जो लोग केवल एकमात्र मोटाई—शरीरपर दूषित मांस लदनेको स्वास्थ्यका लक्षण समझते हैं, उनकी जांचके अनुसार नहीं)। कार्यमें अधिक उत्साह हो गया, मनमें प्रसन्नता और शान्ति रहने लगी। आलस्य बहुत घटा। नींद अच्छी आने लगी। महीनेमें कई बार स्वप्नदोष होता था उससे निजात हो गई।

अब यह इच्छा हुई कि ऐसी उपयोगी चिकित्साका तो घर घर प्रचार होना चाहिये। हर आदमी ही तो रोगके चंगुलमें फंसा है। डाक्टर, वैद्य और उनकी दवाइयोंके पीछे कितना धन बरबाद होता है। लोग जलचिकित्साका उपयोग करने लगें तो हम लोगोंकी दशा कितनी सुधर जाय, कितनी सांसतोंसे बच जायं! उपाय यह निश्चय हुआ कि पहले तो लूईकूने साहबकी चारों पुस्तकें सरल, सरस और शुद्ध हिन्दीमें अनुवादकर, सस्ते मूल्यमें लोगोंके हाथोंमें दी जायं। जलचिकित्साके लिए कामवाले सामानका एक स्टोर रखा जाय। वहांसे उस सम्बन्धकी सब चीजें उचित दाममें लोगोंको भेजी जायं। पूछनेपर सब तरहकी सलाह देनेका प्रबन्ध भी किया जाय। संयोगसे तीनों बातोंका प्रबन्ध हो गया है। अङ्गरेजीमें लूईकूने साहबकी ४ पुस्तकें हैं—

(1) The New Science of Healings, (2) The Science of Facial Expression, (3) Am I Well or Sick ? (4) Rearing of Children.

इनमें नम्बर ३ (Am I Well or Sick ?) का यह अनुवाद आपकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। नम्बर ४ (Rearing of Children) का अनुवाद हो गया है, शीघ्र ही "बच्चोंका पालन-पोषण" के नामसे प्रकाशित होगा। नम्बर १ और २ पुस्तकोंके अनुवादका प्रबन्ध हो जानेपर वे भी शीघ्र ही प्रकाशित कर

दी जायंगी। लूईकूने साहबकी पुस्तकोंके अनुवाद संसारकी प्रायः सभी उन्नत भाषाओंमें हो चुके हैं। मुरादाबादके श्रीमान् कृष्ण-स्वरूप श्रोत्रिय बी० ए०, एल० एल० बी० को पहले पहल इन पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करानेके लिए धन्यवाद देना चाहिए। पर उनके उर्दू अनुवाद ठीक होनेपर भी हिन्दी अनुवादोंमें बड़ी गड़बड़ हुई है, भाषा बड़ी पेचीली और बेमुहावरा है। छपाई, कागज़, साइज़के बारेमें तो जब ये पुस्तकें निकली थीं उस समय हिन्दीमें इन बातोंका ख़याल ही बहुत कम रखा जाता था। दाम सस्ते करनेकी ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इन सबका यही कारण जान पड़ता है कि उस समय हिन्दी पुस्तकोंका इतना अधिक प्रचार न होनेके कारण उन्हें अच्छे सांचेढांचेमें निकालना मुश्किल था। अब यह दशा बदल गई और इसीसे यह पुस्तक इस रूपमें निकाली जा सकी है और शेष तीन पुस्तकें भी निकालनेकी आशा की जा रही है। यदि किसी विद्वान् सज्जनको इसके अनुवादमें त्रुटि देख पड़े तो सूचित करनेका अनुग्रह करें।

जलचिकित्साके लिये कोई नया सामान बाहरसे मँगानेकी ज़रूरत नहीं, लोग घरमें सब चीजें जुटा सकते हैं। पर जिन्हें घरमें ये चीजें न मिलें और जो आराम तथा विधिपूर्वक अधिक दिनतक यह चिकित्सा करना चाहें उन्हें सब सामान यहांसे मंगवा लेना चाहिये।

विनीतः—
महावीरप्रसाद पोद्दार

एक मित्रका अनुभव

उन्हींकी जबानी

"यों तो बचपनसे ही मुझे मन्दाग्निकी कुछ शिकायत थी, पर १९१६ से बदहज़मी, सिरके चक्कर, दांतोंमें दर्द, मसूड़ोंसे खून गिरना, खांसी, हृदयकी धड़कन, कब्ज़, स्वप्नदोष, शरीरकी क्षीणता इत्यादि अनेक रोग आरंभ हो गये। स्वप्नदोष महीनेमें कई बार होने लगा। कई अच्छे और नामी डाक्टरोंकी दवा की, पर मर्ज़ बढ़ता ही गया। जून १९२० में मैं अपनी इण्टरमीजियट बी० एल० परीक्षाकी तैयारी कर रहा था, उस समय स्वप्नदोष प्रायः रोज होने लगा। कमज़ोरीसे उठने बैठनेतकमें कष्ट होने लगा। मैं मनमें जीवनसे प्रायः निराश हो चुका था। तब जलवायु परिवर्त्तनार्थ मंसूरीके लिये बिस्तर बांधे। देहरादून पहुंचनेपर वर्षाका ज़ोर होनेसे मंसूरी न गया।

वहां जिनके घर ठहरा था उनके यहां जलचिकित्साका प्रचार है। मैंने भी कर देखनेका विचार किया। चिकित्सा आरम्भ करते ही आश्चर्यजनक परिणाम हुआ। कई रोग भागते नज़र आये। स्वप्नदोष तो ऐसा दूर हुआ कि छ महीनेकी चिकित्सामें सिर्फ एक बार! और रोगोंसे भी छुटकारा मिल चुका है। मनमें विश्वास हो गया है कि कुछ समय और यह चिकित्सा करते रहनेसे सम्पूर्ण नीरोग हो सकूंगा। पहले मैं ऐसी नीरोगताकी कल्पना तक न कर सकता था। आशा है मेरे अन्य मित्र भी इस चिकित्सासे लाभ उठावेंगे।"

चतुर्थ संस्करणकी भूमिका

"मैं नीरोग हूं या रोगी" इस विषयपर सम्पूर्ण मनुष्यजाति तथा प्रत्येक व्यक्तिका शीघ्र ध्यान देना आवश्यक हो गया है। यह कम चिन्ताका विषय नहीं है कि दिन दिन मनुष्योंका स्वास्थ्य, बल तथा सहनशक्ति घट रही है। रंगरूट भरतीके समय प्रायः देखा जाता है कि शस्त्रधारणकी योग्यतावाले मनुष्योंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। इस सच्चाईपर पर्दा डालनेकी चेष्टा व्यर्थ है। यह खेद-जनक, पर सच्ची दशा कभी छिपी नहीं रह सकती।

सरकार आरोग्यकारक विषयोंपर ध्यान दे सकती है और देती भी है, पर इसका अधिकतर भार प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं लेना चाहिए। जो अपने शरीरकी परवा आप नहीं करता उसके लिए स्वास्थ्यको ठीक रखने अथवा फिरसे प्राप्त करनेकी आशा करना आकाशकुसुम-की भांति है।

जो कर्त्तव्यपरायण मनुष्य अपने बालबच्चोंके पोषण तथा धंधेके लिए शरीर स्वस्थ रखना अपना धर्म समझता है उसे "मैं नीरोग हूं या रोगी" यह प्रश्न बड़ी उलझनमें डाल देता है। यदि वह कुछ पैसे-वाला हुआ तो सालमें एक वा अधिक बार किसी अच्छे डाक्टरसे अपने स्वास्थ्यकी परीक्षा करा लेता है; यद्यपि उस जांचका परिणाम सदा सन्तोषजनक नहीं होता। एकके बाद दूसरी परीक्षाके बीचमें न मालूम क्याका क्या हो जाय। यह पुस्तिका इसी उद्देश्यसे लिखी गई है कि प्रत्येक मनुष्य नित्य निर्भ्रान्त रूपसे अपने साधारण स्वास्थ्य और विशेष कर अपनी पाचनेन्द्रिय तथा फेफड़ोंकी हालत जान सके

यह सत्य है कि यदि फिरसे स्वस्थ होनेका उपाय न बतलाया जाय तो केवल अपने स्वास्थ्यकी दशा जान लेनेसे ही कुछ लाभ न होगा। अतएव इसकी सहायतासे स्वास्थ्यकी गड़बड़का ज्ञान कराने-

के बाद उस स्वास्थ्यरूपी अमूल्य रत्नको फिरसे प्राप्त करनेका उपाय भी बतलाया गया है।

इस पुस्तिकाके सम्बन्धमें यहां यह बता देना उचित होगा कि इसकी प्रथमावृत्ति ८ वर्ष पूर्व निकली थी, दूसरी जुलाई १८८८ में, तीसरी फरवरी १८८९ में। पुस्तकके इस प्रकार आशातीत प्रचारसे स्पष्ट जान पड़ता है कि सभी लोगोंको 'मैं नीरोग हूं या रोगी" इस प्रश्नपर विचार करनेकी आवश्यकता जान पड़ रही है। इस नयी आवृत्तिमें "आकृति-विज्ञान"का एक नया अध्याय जोड़ दिया गया है। आशा है इससे अनेक मनुष्योंकी आकांक्षा पूर्ण होगी।

मैं हृदयसे चाहता हूं कि मेरी यह छोटी पुस्तक प्रत्येक व्यक्तिका ध्यान अपने तथा अपने परिवारके स्वास्थ्यकी ओर अकर्षित करे और समस्त जातियोंके बलवान तथा तेजस्वी होनेमें सहायक हो।

लेपसिग
१ जनवरी, १८९३

लूईकूने

मैं नीरोग हूं या रोगी ?

मनुष्यको उस समय नीरोग कहा जाना चाहिये जब उसकी इन्द्रियां किसी प्रकारकी पीड़ा या बेचैनी पैदा किये बिना अपने काम ठीक तरहसे कर रही हों। कामके बाद थकावट स्वाभाविक है, उससे कोई तकलीफ नहीं, केवल विश्राम तथा निद्राकी स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है। नीरोग मनुष्यको विश्राम उसके पहलेके परिश्रमके समान ही प्यारा लगता है।

समस्त भीतरी इन्द्रियां प्रायः अपना काम अपने आप इस तरह करती रहती हैं कि हमें मालूम भी नहीं होता। मालूम तभी होता है जब इन्द्रियोंमें कुछ गड़बड़ होती है वा कोई बाहरी हानिकर प्रभाव पड़ा होता है। जैसे, भोजनके बाद कोई मनुष्य यदि तृप्तिके सिवा किसी प्रकारकी अशान्ति अनुभव करे तो उसके मेदेमें कुछ गड़बड़ है, वा उसने कोई अनुचित पदार्थ खाया है। शरीरके सम्पूर्ण अङ्गोंका परस्पर ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि किसी भी अङ्गके अपना काम ठीक तरह न करनेसे सारे शरीरपर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है; जैसे, किसी परिवारमें एकके बीमार पड़नेसे सबको कुछ न कुछ कष्ट उठाना पड़ता है। सम्भवतः हर आदमी अपने दैनिक जीवनमें इसकी सत्यताका अनुभव करता है। हाथमें चोट लग जानेसे केवल उसीके काममें बाधा नहीं पड़ती बल्कि हमारी इच्छाके वशमें न रहने वाली हृदय और मेदे सरीखी इन्द्रियोंतकपर उसका प्रभाव पड़ता है। सम्भव है किसी घावके कारण कुछ दिनके लिये हमारी भूखतक बन्द हो जाय। क्योंकि ज्ञानतन्तुओंद्वारा शरीरके सारे अङ्ग परस्पर सम्बद्ध हैं। इसलिये हम दावेके साथ कह सकते हैं कि प्रत्येक गड़बड़का प्रभाव कुछ शरीरपर पड़ता है; इसके विरुद्ध यदि हम दिखा

दें कि सिर्फ एक अङ्ग भी अपना काम *बिलकुल ठीक* कर रहा है, तो सारा शरीर नीरोग है। परन्तु पुराने विकार मनुष्यके सारे शरीरमें प्रत्यक्ष परिवर्त्तन कर देते हैं, इससे शरीरके किसी भी अङ्गद्वारा उसका काम पूर्ण रूपसे नहीं होता। मनुष्यके चेहरेपर ये परिवर्त्तन खूब अच्छी तरह झलकते हैं, *क्योंकि मुखमण्डलपर विशेष रूपसे ज्ञानतन्तुओंका एक बड़ा समूह विद्यमान है*। जीर्ण या तीव्र रोगोंके मुखपर पड़े हुए प्रभावको साधारण मनुष्य भी देख सकता है। परन्तु रोगकी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था—विशेषकर जीर्ण रोगोंकी प्रारम्भिक अवस्थामें चेहरेसे रोगका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव न होनेपर भी बहुत कठिन अवश्य है। ग्रन्थकर्ताके बहुत वर्षोंतक ध्यानपूर्वक इस प्रश्नपर विचार करनेका फल "आकृति विज्ञान" (Science of Facial Expression) का आविष्कार है। उसके बादसे उसे मुख तथा गर्दनकी दशा और आकृति देखकर रोगके स्थान तथा अवस्थाका ठीक निर्णय करनेमें सदा सफलता प्राप्त हुई है। किन्तु लक्षण देखकर रोगका पता लगानेकी कलाको वर्णन करके समझाना बहुत ही कठिन काम है; इसका वास्तविक ज्ञान केवल लगातार अभ्याससे ही हो सकता है। पर यहां रोगके निदानकी एक इससे भी सरल विधि बतलाई जायगी। आकृतिविज्ञानकी कुछ चर्चा अन्तमें की जायगी।

शरीरका गठन और पोषण करनेवाली इन्द्रियां अर्थात् फेफड़ा (सांस लेनेवाली इन्द्रियां) और मेदा—(पचानेवाली इन्द्रियां) शरीरमें सबसे अधिक महत्त्व रखती हैं। और मजा यह कि यही दोनों बहुत शीघ्र रोगके चंगुलमें फंसती हैं।

वास्तवमें जांचसे यह सिद्ध हो गया है कि सारी भीतरी गड़बड़की जड़ यह मेदा ही है। पाचन बिगड़ा कि साथ साथ दूसरे रोगोंका आक्रमण अनिवार्य हो जाता है—कमसे कम भोजनके ठीक रस न बननेका प्रभाव तो होता ही है, क्योंकि रुधिरका अच्छा या बुरा

होना पाचनक्रियाकी रीतिपर निर्भर है, और शरीरके उचित पोषणके लिये रुधिरका शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है।

उचित पाचन

बहुत ही कम आदमी यह गर्व कर सकेंगे कि हमारी पाचनशक्ति बिलकुल ठीक है। इनकी संख्या लगभग बूढ़े होकर बिना रोग मरनेवाले लोगोंके समान ही होगी। इसपर आप आश्चर्य न करें, क्योंकि लोग मेदेपर जितना अत्याचार करते हैं उतना दूसरे किसी अङ्गपर नहीं। उचित तो यह है कि मेदेमें कोई गड़बड़ शुरू होते ही हम तुरन्त उसपर ध्यान दें। उसे पहचानना बहुत ही आसान है; डकार, कै (उलटी) या मेदेमें किसी तरहका भारीपन विकारके निश्चित चिह्न हैं। पर जबतक ये बढ़कर तकलीफ नहीं देने लगते तबतक प्रायः इनकी परवा नहीं की जाती। अब हम एक ऐसी पहचान बताना चाहते हैं कि जिससे मेदेका छोटेसे छोटा विकार भी जान लिया जा सकता है। मेदेमें कोई खराबी न रहनेपर सारी पाचनेन्द्रियां अपनी जगह अपना काम ठीक तरहसे करती रहती हैं। मलका निकाश भी उचित रूपमें होता है। आंतका द्वार—मलका निकासद्वार-ऐसी खूबीसे बना हुआ है कि शौचके बाद वहां जरा भी मल न लगा रहना चाहिये। और कभी वही मल लगा रह जाय तो समझ लो कि बड़ी आंतमें मल पहुंचानेके पूर्व काम करनेवाली इन्द्रियोंने अपना काम ठीक ठीक नहीं किया है और पाचनेन्द्रियोंमें कुछ न कुछ दोष जरूर हुआ है। जंगली जानवरोंका मल तथा उसके निकासस्थानको देखकर निश्चित रूपसे उनके स्वास्थ्यका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। और यही पहिचान मनुष्यके लिये भी है। बिलकुल नीरोग मनुष्यको शौचके लिये जलकी कोई जरूरत नहीं होती, उसके वहां जरा भी मल नहीं लगता। मलके ऐसी बिलकुल ठीक दशामें होनेपर यह सवाल ही फजूल है कि मल कितना और कै बार आता है। नीरोग शरीर आवश्यकतानुसार इसका प्रबन्ध

आप कर लेता है। बालक, युवा आदि सबपर बहुत दिनोंतक आज़माइश करके इसका निश्चय किया गया है; किसी दशामें यह बात गलत नहीं निकली। ऐसी सोलह आने शुद्ध पाचनशक्तिका मनुष्य निस्सन्देह दावेके साथ कह सकता है कि मैं नीरोग हूं। उसका समस्त शरीर निर्दोष है, क्योंकि शरीरमें कहीं जरा भी रोग होनेकी दशामें मेदेपर उसका थोड़ा बहुत प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। हम बिना और कुछ देखे भाले ऐसे पूर्ण नीरोग मनुष्यके लिये यह कहनेको तैयार हैं कि वह अपना जीवन स्वाभाविक और उचित रूपसे बिताता है। लेखककी विशेष रूपसे प्रार्थना है कि जिनका मलनिकास ऐसे शुद्ध रूपसे होता हो वे उसे सूचित करनेकी कृपा करें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे लोग शायद ही मिलें।

अपचके कारण और परिणाम

इसमें सन्देह नहीं कि अपच अस्वाभाविक रहनसहनसे होती है। हम लोगोंमें ज्यों ज्यों चटोरापन—मांस, मदिरा, तेज चरपरे मसाले, झोलदार चीजें आदिके खानेकी लत बढ़ती जाती है त्यों त्यों पाचनशक्ति भी बिगड़ती जाती है। हमें अपने पूर्वजोंका सीधा सादा, सात्विक आहार अब पसन्द नहीं आता, जबतक थालीमें कई चटपटी चीजें, भांति भांतिके खूब खट्टे-मीठे पदार्थ न हों तबतक हमारी रसना तृप्त नहीं होती। पाचनेन्द्रियोंपर एक ओर तो इस प्रकार बोझ डाला जाता है, दूसरी ओर चीजोंके सत निकाल निकालकर और उन्हें अनेक ऐसे रूपोंमें बदलकर पेटमें पहुंचाया जाता है कि उसे पचानेमें मेदेको अधिक मेहनत न पड़े। मेदेपर बड़ी मेहरबानी की जाती है!

जैसे शरीरके दूसरे अङ्गोंसे उनकी शक्तिसे बहुत अधिक अथवा बहुत कम काम लेनेसे वे निर्बल हो जाते हैं; वैसीही मेदेकी भी दशा है। मेदेकी निर्बलता और विकार इतने धीरे धीरे बढ़ते हैं कि वह उन आदमियोंकी आदतमें दाखिल हो जाते हैं, उन्हें ऊपरसे जरा भी

नहीं अखरते, पर इसका फल बहुत ही बुरा होता है। अगर मेदेपर किये गये अत्याचारोंका असर धीरे धीरे न होकर शराबके नशेकी तरह फौरन् होता तो आदमी झटपट उसके दूर करनेका उपाय भी करता। बेचारे मेदेपर बचपनहीसे अत्याचार होने शुरू हो जाते हैं। जिन्हें बचपनमें माताका दूध न मिलकर कृत्रिम-बनावटी आहार मिलता है उनके मेदेकी दुर्दशा तो कुछ न कुछ तभीसे आरम्भ हो जाती है। स्त्रियोंका अपने बच्चेको दूध न पिला सकना बड़े दुर्भाग्यकी बात है। इससे स्त्रीका रोगी होना साफ साबित होता है। पर कृत्रिम आहार-से मेदेका बिगड़ना तो बादकी बात है इसके पूर्व ही अधिकतर बच्चे तो पेटसेही बीमार निकलते हैं। क्योंकि रोगी माता-पिताकी सन्तान नीरोग कहांसे आवेगी ? बुरा बीज अच्छे फल कैसे लावेगा ?

बात बड़े दुःखकी है, लेकिन कोरी शिकायतसे कुछ फल नहीं होगा। अब देखना यह चाहिये कि हम उपाय क्या कर सकते हैं ? यह समझना ठीक नहीं है कि हमारे हाथमें इसका कोई उपाय नहीं है। आगे बढ़नेपर उपाय मालूम होंगे।

अब हमें जरा विस्तारपूर्वक इस विषयपर विचार करना चाहिये कि *हमारे शरीरमें विकारोंकी उत्पत्तिका कारण* क्या है ?

शरीर अप्राकृतिक भोजनको शत्रुके समान समझता है और यथासंभव शीघ्र उसे निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न कभी कै, कभी दस्त और कभी अन्य रूपोंमें प्रकट होता है। और यदि शरीर उसे इस तरह तत्काल न निकाल सका तो कमसे कम वह भोजन अपक्व दशामें ही—पचकर निकलनेके पूर्व ही—जरूर निकाला जाता है, और अपने साथ हितकर भोजनके अंशको भी अपक्व दशामें बाहर निकाल लाता है। इस प्रकार अस्वाभाविक और अपक्व हितकर भोजनके अंश एक साथ बड़ी आंतमें पहुंचते हैं, इससे मनुष्यको उस हितकर भोजनके अंशका कुछ लाभ नहीं मिलता। ऐसा अंश पेटसे प्रायः प्राकृतिक रीतिसे निकल जाता है, पर न निकला

और रक्तमें मिल गया तो वह शरीरमें ही जमा हो जाता है। एकाध बार तो मनुष्य ऐसे बुरे परिणामसे बच भी जाता है। पर मनुष्य स्वाभाविक नियमोंको एक ही बार भङ्ग करके तो नहीं रह जाता ? बारबार इसे भंग करता चला जाता है। यह कम खेदका विषय नहीं है कि प्रायः नित्य ही वह इन नियमोंका उल्लङ्घन करता है। शरीरमें बहुत दिनोंतक अप्राकृतिक भोजन तथा अपक्क भोजनको निकाल देनेका कार्य करनेकी शक्ति नहीं रहती। इससे शरीरमें शीघ्र ही विजातीय द्रव्य जमा होने लगता है। आरम्भमें विजातीय द्रव्य पेड़ के पास, मलमूत्र त्यागके स्थानोंके निकट इकट्ठा होता है। फिर उसमें नित्य नया बना विजातीय द्रव्य मिलकर वृद्धि होती जाती है और शीघ्र ही भीतर ही भीतर उसमें एक परिवर्त्तन होने लगता है। उसके अंश बिखरने लगते हैं और उनमें उबाल-सड़न उत्पन्न हो जाती है। विजातीय द्रव्य घुल जानेपर शरीरमें ऊपर तथा नीचेकी ओर फैलने लगता है और धीरे धीरे शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें जमा हो जाता है। यह द्रव्य पेड़ूसे उधर सिरके सिरेतक और उधर हाथ तथा पैरोंकी सीमातक पहुंचे बिना नहीं रुकता। उस समय शरीर इसे हर तरहसे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है पर अधिक कालतक वह इस क्रियामें समर्थ नहीं होता। इस प्रयत्नमें शरीरको बहुत अधिक पसीना आता है, फोड़े फुन्सियां आदि अन्य क्रियाएं होती हैं। आरम्भमें सदा यह हाथ पैरमें होती हैं। पांवका पसीजना—जिसके सम्बन्धमें इतना अधिक मतभेद है—असलमें शरीरकी सफाईके लिए ही होता है। वास्तवमें यह रोगका लक्षण है, लेकिन इसे कृत्रिम उपायोंसे रोकनेका फल केवल यह होगा कि शरीरमें अव्यवस्था बढ़ेगी। शरीरको उत्तेजित करनेवाली घटनाएं, जैसे आकस्मिक ठंड, बाहरी चोट, प्रबल मनोविकार इत्यादिका नतीजा प्रायः यह होता है कि शरीर अङ्गोंके सिरोंपर जमा हुए विजातीय-द्रव्यको उसके उत्पत्तिस्थानकी ओर वापस भेजने लगता है। उस समय वह द्रव्य प्रायः जोड़ोंके पास आकर रुक जाता है, इसीसे

सूजन पैदा होती है, जो उपर्युक्त कारणोंसे सदा जोड़ोंके नीचेकी ओर ही प्रकट होती है। गठियाके किसी भी रोगीको देखकर हम इसका अनुभव कर सकते हैं।

जिन अङ्गोंमें विजातीय द्रव्य जमा हो जाता है वे अपना स्वाभाविक कार्य उचित रूपसे सम्पन्न नहीं कर सकते। रक्तप्रवाहमें बाधा पड़ने लगती है और इससे शरीरका यथेष्ट पोषण नहीं हो पाता। बहुत अधिक विजातीय-द्रव्य जमा हो जानेपर अङ्ग छूनेसे ठंडे जान पड़ते हैं। उनमें गर्मी लाना बहुत कठिन हो जाता है। पहले पहल शरीरके अग्रभाग—जैसे हाथपैर ठंडे होते हैं, पर शीघ्र ही दूसरे अङ्गोंमें भी इसका प्रभाव प्रतीत होने लगता है।

साथ ही विजातीय-द्रव्यके कारण शरीरकी आकृतिमें एक अस्वाभाविक परिवर्त्तन हो जाता है। पर यह प्रायः हर आदमीमें होनेके कारण अधिकांश मनुष्योंको इसमें कोई आश्चर्य नहीं होता। यद्यपि इन परिवर्त्तनोंसे ही मनुष्यको मालूम हो सकता है कि उसके शरीरमें विजातीय द्रव्यकी कितनी मात्रा इकट्ठी हो गई है। लेखकके आकृतिविज्ञानकी नींव भी इन्हींपर है। गर्दन और चेहरा ही ऐसे अङ्ग हैं जिनमें जरा भी परिवर्त्तन होनेपर ताड़ लेना संभव है। पर इस प्रकार देखकर पहचानना और उससे परिणाम निकालना केवल उसी मनुष्यके लिये संभव है जिसने बहुत दिनोंतक इस विषयका ध्यानपूर्वक अवलोकन किया हो। यहाँ हम शरीरके बिलकुल नीरोग होनेके चिह्नकी बातपर पाठकोंका ध्यान फिर आकर्षित करते हैं। जब इस चिह्नसे यह जान लिया गया कि शरीर नीरोग है, तब पाचनेन्द्रियोंमें तो सड़े हुए पदार्थकी उपस्थितिकी शङ्का ही नहीं की जा सकती। और उनमें नहीं तो फिर शरीरमें नहीं है, क्योंकि इन खराबियोंका प्रारम्भ तो वहींसे होता है। लेकिन उस चिह्नसे यदि यह शरीर नीरोग न जान पड़े तो हमें सबसे पहले शरीरकी आकृतिके परिवर्त्तनसे पता लगाना चाहिए कि शरीरमें विजातीय द्रव्यकी कितनी मात्रा इकट्ठी हो गई है। कभी कभी तो विजातीय द्रव्य

इस रूपमें होता है कि हर कोई उसे देख सकता है—जैसे गांठें, गिल्टियों इत्यादिके रूपमें। ये गांठें आदि शरीरकी आकृतिके अन्य परिवर्त्तनोंकी भांति ही शरीरको भीतरसे बिलकुल साफ कर डालनेपर अपने आप लुप्त हो जाती हैं। पर यदि उन्हें कृत्रिम उपायोंसे दूर करनेकी चेष्टा की जाय तो शरीरको हानि होगी। कारण, उस दशामें वहांका विजातीय द्रव्य शरीरके दूसरे भागमें चला जाता है।

जिस मनुष्यके शरीरमें विजातीय द्रव्य मौजूद है वह जीर्ण रोगोंके चंगुलमें फँसा हुआ है। जिसमें जितना अधिक विजातीय-द्रव्य है वह उतना ही अधिक रोगग्रस्त है। विजातीय द्रव्यके संग्रहके एकके बाद एक होनेवाले परिणामोंसे रोगीको अपने शरीरकी स्थितिका वास्तविक ज्ञान होने लगता है।

विजातीय द्रव्य सदैव सड़ना चाहता है, पर इस सड़नका शीघ्र अथवा देरसे आरम्भ होना बाहरी दशाओंपर निर्भर है। ऋतुका परिवर्त्तन, सड़न उत्पन्न करनेकी शक्ति रखनेवाला भोजन अथवा अन्य कारणोंसे सड़नका आरम्भ हो सकता है। शरीरमें विजातीय द्रव्यकी अधिकता होनेपर यह सड़न सारे शरीरमें या शरीरके अधिकतर हिस्सोंमें फैल जा सकती है। सड़नसे गर्मी उत्पन्न होती है और सड़नकी क्रिया चारों ओर होनेपर सारे शरीरको इस गर्मीका अनुभव होता है। इसीको लोग ज्वरकी धधक कहते हैं। सड़नके समय जब विजातीय द्रव्य तेजीसे फैलता है तो शरीर यथाशक्य उसे बाहर निकालनेमें अपनी सारी शक्ति खर्च कर देता है। विजातीय द्रव्य निकालनेके इस शारीरिक प्रयत्नका नाम *बुखार* है। *इसलिये शरीरमें सड़नकी क्रियाके कारण होनेवाला प्रत्येक तीव्र ज्वर शरीरकी पुनः स्वास्थ्य प्राप्तिकी चेष्टा है।* ऐसे ही ज्वरसम्बन्धी विकार तीव्र रोग कहलाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि शरीरको अपने प्रयत्नमें सफलता प्राप्त

होते ही ज्वर अपने आप दूर हो जायगा। ज्वरके दूर करनेका यही एकमात्र प्राकृतिक उपाय है। यदि इसे कृत्रिम रीतिसे दबा दिया जाय तो सड़नेवाला पदार्थ शरीरके भीतर ही रह जाता है और शरीरमें जीर्ण रोगोंकी जड़ अधिकतर दृढ़ हो जाती है।

प्यारे पाठक, क्या आपने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया कि आपका एक मित्र तो ज्वरके बाद अपनेको अधिक तन्दुरुस्त बतलाता है, पर दूसरा ज्वरसे हानिकी शिकायत करता है? यह क्यों? पहले उदाहरणमें तो ज्वरको शरीरके भीतर जमा हुआ कूड़ा करकट निकालनेमें सफलता प्राप्त हुई और दूसरेमें नहीं। आशा है अब आपको इन दो परस्पर विरुद्ध दीख पड़नेवाली बातोंके समझनेमें कोई उलझन न होगी।

ज्वरके भिन्न भिन्न बाहरी रूपोंके आधारपर उसके अनेक नाम पड़ गये हैं। इसी तरह बच्चोंपर आक्रमण करनेवाले रोगोंके भी अनेक नाम रक्खे गये हैं। बच्चोंके शरीरमें सफाईका काम करनेकी शक्ति अधिक रहती है; इसीसे उन्हें खसरा, लालज्वर, चेचक, (शीतला) इत्यादि जैसे रोग होकर शरीरकी सफाई हुआ करती है। हैजा, टाइफस और पेचिश भी ऐसे ही रोगोंमेंसे हैं। पूर्व कथनानुसार इन सबकी उत्पत्तिका कारण एक ही है। पर इनका भिन्न भिन्न रूप बाहरी बातोंपर निर्भर है—विशेषकर इस बातपर कि शरीरकी स्वाभाविक रूपसे सफाईके मार्गोंके निकट विजातीय द्रव्य कितना कम या ज्यादा इकट्ठा हुआ है।

विचारनेकी बात है कि प्रायः मोटेताजे आदमियोंको तीव्र ज्वर क्यों नहीं होता? उनका शरीर विजातीय द्रव्यको बटोरता रहता है, केवल पसीने तथा अन्य मार्गोंसे कुछ अंश निकलता है। ऐसे मनुष्य प्रायः अपने अच्छे स्वास्थ्यपर नाज़ (अभिमान) करते हैं, क्योंकि शनैः शनैः इकट्ठे होनेवाले पदार्थसे उन्हें कष्ट नहीं प्रतीत होता। लेकिन आगे चलकर दवाद्वारा दबाये हुए ज्वरवाले मनुष्यों-के समान ही इनकी भी दशा होती है। उस समयका असर जल्दी

फूट निकलनेवाली बीमारियोंको अपेक्षा अधिक भयंकर होता है।

इस विजातीय द्रव्यके जमावसे क्रमशः कष्टकर विकार उत्पन्न होते हैं—सिरदर्द, जुकाम, खांसी, दन्तविकार तथा अन्य दुःखदायी रोग शुरू हो जाते हैं। जीवन भारमय हो जाता है। धीरे धीरे स्नायुसम्बन्धी विकार बढ़कर सताने लगते हैं। शरीरका कोई कोई हिस्सा तो बिलकुल नष्ट हो जाता है; दांत खराब हो जाते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं या सिर गंजा हो जाता है। आंख और कानोंमें अपना काम अच्छी तरह करनेकी शक्ति नहीं रह जाती, अन्धे और बहरेपनतककी भी नौबत पहुंच जाती है। हाथ, पैर जिनमें विजातीय द्रव्य अधिकतर जमा होता है ठंडे पड़ जाते हैं, इसके बाद प्रायः गठियाका नम्बर है। पाचनशक्ति दिन दिन क्षीण होती जाती है। कभी कब्ज और कभी पतले दस्त आने लगते हैं। ये दोनों भीतरी गर्मीके चिह्न हैं; सड़नकी समस्त क्रियाओंमें आंतोंमें गर्मीका जोर हो जाता है और मल बाहर निकालनेमें सहायक, आंतमें रहनेवाला चिकना पदार्थ सूख जाता है और इसीसे कब्ज हो जाता है। जब कभी शरीरशुद्धिकी क्रियाका जोर होता है तो बिना पचे पदार्थ शरीरसे पतले दस्तके रूपमें बाहर निकलते हैं, इसीको अतिसार कहते हैं।

इन्हीं समस्त कारणोंसे रोग उत्पन्न होते हैं। रोगोंके भिन्न भिन्न नाम गिनाये जा सकते हैं। लेकिन उनसे किसीको कुछ लाभ न होगा; इसलिए यहां हम केवल फेफड़के प्रसिद्ध तथा भयंकर रोगों और उनकी उत्पत्तिके कारणोंका ही वर्णन करेंगे।

दूसरी इन्द्रियोंकी भांति फेफड़ोंमें रोगका प्रारम्भ सड़े हुए पदार्थ जमा हो जानेपर ही होता है। इन पदार्थोंके निकासमें रुकावट पैदा होनेपर फेफड़ोंका नाश होने लगता है। पेड़की ओरसे आनेवाला सड़ता हुआ पदार्थ पहले फेफड़ोंमें होकर ऊपरकी ओर जाता है और कन्धोंके नीचे फेफड़ोंके ऊपरी सिरोंमें जाकर रुकता है। इससे आगे सिर या हाथकी ओर जानेमें अशक्त होनेके

कारण फेफड़ोंके सिरोंमें रगड़ और सड़न उत्पन्न करता है। नतीजा यह होता है कि विकृत पदार्थकी यह सड़न बहुत तेज हो जानेपर फेफड़ोंका नाश आरम्भ हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि रोग सदा फेफड़ोंके अग्रभागमें आरम्भ होता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने फेफड़ोंकी ठीक दशाका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उनकी नीरोग दशामें हम मुंह बन्द रखकर नाकसे सांस लेते हैं। जब कभी हमें मुंहसे सांस लेनेको विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिए कि इसका कारण नाक या फेफड़ोंकी कोई खराबी है। नाकके रोगोंकी पहचान बहुत सहज होनेके कारण हम सांस लेनेकी रीतिका निरीक्षण कर फेफड़ोंकी दशाका निर्भ्रान्त ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। साधारण चालके समय केवल इतना ही ध्यान देनेकी जरूरत है कि हम अपना मुंह बन्द रख सकते हैं या नहीं, और इससे भी अच्छी परीक्षा यह होगी कि हमारी नींदकी दशामें दूसरा आदमी देखे कि हमारा मुंह खुला रहता है या बन्द। इसके सिवा मुंहके कम या ज्यादा खुले रहनेपर भी बीमारीकी कमी या ज्यादतीका निस्संशय ज्ञान हो सकता है। दीर्घजीवी मनुष्य प्रायः चलते समय अपना मुंह बन्द रखते हैं। उनके बड़ी उम्र पानेका कारण यही है कि उनके फेफड़े नीरोग होते हैं और उनका साधारण स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जब उन्हें सांस लेनेमें कठिनाईकी शिकायत हो तो समझ लीजिए कि अब उनके दिन पूरे हो आए।

क्षणभरके लिए भी यह मत समझो कि मुंहका खुला रहना सिर्फ एक आदत है। यह दशा सदा किसी न किसी रोगके कारण होती है और बिना इस रोगके दूर हुए चेष्टाके बिना मुंह बन्द नहीं रक्खा जा सकता। यदि हम लड़कियोंपर इस बातकी परीक्षा करें तो हम प्रत्येक लड़कीके सम्बन्धमें यह जान सकते हैं कि वह पवित्र मातृकर्त्तव्य, अर्थात् स्तनोंसे बच्चोंको दूध पिलानेके योग्य है या उसके योग्य होनेके लिए उसे पूरी पूरी चिकित्साकी आवश्यकता है।

रोगी फेफड़ेवाली स्त्रियां बहुत कम अपने बच्चोंको दूध पिलाने योग्य होती हैं। दूध पिलानेकी अयोग्यताका लोग चाहे जो कारण समझते रहें लेकिन मुख्य कारण यही है।

उपर्युक्त बातोंके आवश्यक परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और रोगियोंकी चिकित्सा इन्हींपर निर्भर है। समग्र भांतिके रोगों (सिवा बाहरी चोटोंके) का केवल एक ही कारण है, और सच पूछा जाय तो रोग भी एक ही है, जो तरह तरहके रूपोंमें प्रकट होता है। यह हम लोगोंके अनुसन्धानका महत्त्वपूर्ण फल है, जिसकी सत्यता आगे चलकर अकाट्य प्रमाणोंसे सिद्ध की जायगी। विज्ञानमें किसी कथनकी सचाई झुठाई जांचनेके लिए एक सिद्ध कसौटी है—परीक्षा और नियमानुसार खोज। यदि सब रोगोंकी जड़ एक ही है तो उन सबकी चिकित्सा भी यदि आविष्कृत हो सके तो मुख्य बातोंमें एक ही होना चाहिये। इसलिए यदि हम सब बीमारियोंको दूरकर सकनेवाली एक ही चिकित्सा निकाल सकें जिसमें मनुष्य विशेषके लिये केवल थोड़ासा हेरफेर करना पड़े तो हमें इच्छानुसार प्रमाण मिल जायगा। ऐसी चिकित्सा प्रायः अपने आप आविष्कृत हुई है, और बिना इधर उधरकी लम्बी चौड़ी लगाये अब हम इस प्रश्नपर विचार करते हैं कः— २१ सितंबर १९३५.

रोग कैसे दूर हो सकते हैं?

वास्तवमें तो शरीर अपनी चिकित्सा आप कर लेता है, हमारा काम तो सिर्फ इतना ही होना चाहिये कि हम सब बातोंका ऐसा सिलसिला बांध दें कि उसे आरोग्य प्राप्तिमें जरूर सफलता हो। इस हिसाबसे हमारा काम सिर्फ इतना ही रह जाता है—

(१) शरीरमें सड़नेवाले नवीन पदार्थ न जाने देना।

(२) ऐसे पुराने पदार्थको बाहर निकालना।

इसके लिए हमें करना यह चाहिये:—

(१) अपना जीवन प्राकृतिक नियमानुसार बितावें।

(२) इस ओर ध्यान रक्खें कि शरीरका कूड़ा निकालनेवाली इन्द्रियां अपना काम मजेमें कर सकें।

प्राकृतिक आहार क्या है ?

सब प्रकारके रोगियोंके लिये किसी एक ही प्रकारका भोजन नहीं बतलाया जा सकता; प्राकृतिक भोजनोंमेंसे रोगीकी दशाके अनुसार कोई भोजन चुन लेना चाहिए। जब किसी खाद्य या पेय पदार्थसे डकार आवे तो समझना चाहिए कि मेदा उसे स्वीकार नहीं करता। अतः जबतक शरीर स्वीकार न करने लगे उसे ग्रहण न करना चाहिये। इसे तो एक अपना मूल सिद्धान्त बना लें कि मेदेपर कभी अधिक बोझ न डालें—ठूंसकर न खायं। इससे पूरा पाचन होना असंभव हो जाता है, और अधूरा पचा हुआ आहार शरीरके लिये कूड़ामात्र है। पुराने रोगियोंका पेट प्रायः निकल आता है, इसका कारण है पेय पदार्थोंका अधिक प्रयोग अथवा पेटमें विजातीय द्रव्यकी सड़न। ऐसे मनुष्योंको अपने भोजनका अन्दाज नहीं रहता; उन्हें चाहिये कि कभी उचित परिमाणसे अधिक भोजन न करनेकी ओर पूर्ण ध्यान दें या दूसरा कोई हो जो उनपर निगाह रक्खे।

ठोस भोजन करनेकी ओर सबसे ज्यादा खयाल रखना चाहिए। जो चीजें निगलनेके पहले खूब चबानी पड़ती हैं वह तरल—पतले या मुलायम भोजनसे सदा शीघ्र और आसानीसे पचनेवाली होती हैं। खूब चबानेसे ही भोजनमें मुंहकी लार उचित परिमाणमें मिलती है और यही भोजनको पचने योग्य बनाती है। इसी कारण वे सब आहार जिन्हें हम उनकी असली—बिना बदली अवस्थामें खा सकते हैं, बहुत जल्द पचते हैं और हमारे शरीरके लिए बहुत हितकर होते हैं। सारे पकाये हुए भोजन पचनेमें भारी होते हैं। पर हर हालतमें भोजनको खूब चबाना जरूरी है।

"नीरोग होनेका नया और सहज उपाय" The new Science of Healing नामक पुस्तकमें इसका वर्णन विशेष रूपसे किया गया है।

शरीरके कूड़ेकी सफाई

शरीरमें जमा हुआ कूड़ा निकालने तथा बिलकुल सफाई होने-तक इस क्रियाके जारी रखनेके सम्बन्धमें अब हम विशेष रूपसे लिखते हैं:—

शरीरमें मल निकालनेवाली चार मुख्य इन्द्रियां हैं—फेफड़े, त्वचा, चमड़ा, गुदा (पैखाना निकलनेका स्थान) और मूत्रेन्द्रिय। शरीरका कूड़ा निकालनेके लिये इन सबसे पूरा काम कराना होगा।

फेफड़े—अपना काम शरीरमें भलीभांति हरकत होनेपर ही कर सकते हैं। पूर्ण नीरोगताके लिये, खुली हवामें खूब व्यायाम करना आवश्यक है। विजातीय द्रव्य साफ होनेके समय रोगी आसानीसे अपने आप गहरी सांस लेने लगता है।

त्वचा—चमड़ेकी तहके पास जमा हुआ कूड़ा निकालना ही त्वचाका मुख्य काम है।

जब तक यह काम नियमित रूपसे होता रहे किसी भयंकर बीमारीकी आशङ्का न करनी चाहिए। लेकिन विजातीय द्रव्यके कारण रक्त-संचालनमें बाधा पड़नेसे त्वचाके कार्यमें शिथिलता आ जाती है, फिर छूनेसे त्वचा सदा ठंडी जान पड़ती है। स्पर्शशक्ति हमें बतलाती है कि यह स्थिति अप्राकृतिक है, क्योंकि शरीरके ठंडे अंगोंको छूना अच्छा नहीं लगता। हमें इस प्रकार शिथिल हुई त्वचामें गर्मी पहुंचाकर फिरसे काम करनेकी शक्ति पैदा करनी चाहिये। जीवोंके बढ़नेके लिए गर्मी और ठंडक दोनों आवश्यक हैं। त्वचापर भी इन दोनोंका बड़ा लाभकारी प्रभाव पड़ता है। इनसे उसके छिद्र खुल जाते हैं और वह काममें तत्पर हो जाती है। भापमें ये दोनों गुण हैं। हमारी तात्पर्यसिद्धिके लिए वाष्प-स्नानसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। ठीक

प्रकारसे लेनेपर इससे सदा हमारी त्वचामें काम करनेकी शक्ति आ जाती है। (पुस्तकके शेषमें वाष्पस्नानकी सर्वोत्तम विधि दी गई है)। अब छोटे बच्चोंके लिए एक इससे भी अधिक स्वाभाविक उपाय बतलाया जाता है। आपने देखा होगा कि ठंडक लगनेपर बच्चे मांसे चिपटना चाहते हैं। बच्चोंमें माताके शरीरकी गर्मीसे अपना बदन गर्म करनेकी बड़ी इच्छा रहती है। उन्हें ऐसा करना भी चाहिए। यह स्वाभाविक बात कुछ बाबू लोगोंको बेढंगी मालूम होगी। पर जिस माताके हृदयमें पवित्र और स्वाभाविक मातृप्रेमका निवास है, वह अपने बच्चेको साथ सुलाने और अपने शरीरकी गर्मी पहुंचानेका कार्य बड़ी प्रसन्नतासे करेगी; बच्चेके खसरे, लालज्वर, डिप्थीरिया जैसे तीव्र रोग भी उसे भयभीत न कर सकेंगे। इस स्वाभाविक चिकित्साका आश्चर्यजनक फल होता है। वास्तवमें बच्चोंको अगर मांके शरीरसे उचित गर्मी मिलती रहे तो उन्हें बहुत कम रोगोंका सामना करना पड़े। ग्रन्थकर्त्ता जानता है कि इस एक बातसे उसे कितने लोगोंके कुसंस्कारोंका विरोध करना पड़ रहा है, लेकिन इससे वह सचाईपर पर्दा नहीं डाल सकता। यदि लोग इसका उपयोग करें तो कितने ही परिवारोंको अकथनीय लाभ हो। बराबर देखा जाता है कि स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य इस विषयमें हमारी अपेक्षा मातृकर्तव्यको विशेष रूपसे समझते हैं। जरा पशुओंकी ओर ध्यान दीजिए, मुर्गी तथा पालतू चौपायोंको देखिए। वे कितने प्रेमसे अपने शरीरद्वारा अपने बच्चोंको गर्मी पहुंचाते हैं। लेकिन हां, इस कामके लिए स्वयं मातामें यथेष्ट गर्मी होना चाहिए। यदि उसीके शरीरमें गर्मी लानेके लिए बाहरी उपायकी आवश्यकता हो तबतो वह अपने बच्चेका पालन क्या करेगी ? बच्चोंको असली लाभ तो मातृस्नेहसे ही मिल सकता है, पर जिन बेचारोंको यह नसीब न हो उन्हें हलका भापस्नान देना चाहिये।

आंत, गुर्दा—इन मूत्र और मल दोनोंके भीतरी स्थानपर वाष्पस्नानका प्रभाव पड़ता है, पर इसके सिवा उन्हें और अधिक

जोरदार प्रयोगकी आवश्यकता होती है। सदा सड़कर उबलते हुए पदार्थ ज्यादातर उन्हीं मार्गोंसे बाहर निकलते हैं। अन्य अङ्गोंकी अपेक्षा उन्हीं स्थानोंमें अधिकतर जमा रहते हैं, इससे वहां प्रायः कुछ न कुछ जलन बनी रहती है। अतः बड़ी सावधानीसे उन दोनों स्थानोंमें ठंड पहुंचानेकी आवश्यकता है। इसका सबसे सहज और उत्तम उपाय उदरस्नान या मेहनस्नान है। विजातीय द्रव्यको बाहर निकाल देनेके लिए उदरस्नानके समय उन द्वारोंके यथासंभव निकट स्थानको कपड़ेसे रगड़ना पड़ता है, जिसमें जलन बढ़ने न पावे। पर यह क्रिया पानीके भीतर ही करनी चाहिए। इससे प्रायः फुन्सियां हो जाती हैं, जिनके द्वारा विजातीय द्रव्य सदाकी अपेक्षा अधिकतासे बाहर निकलता है। जब जब उपर्युक्त स्थानोंमें गर्मी मालूम हो ऐसे स्नान लेने चाहिए। संभव है एक एक दिनमें तीन तीन, चार चार बार लेने पड़ें और किसी किसी दशामें एक एक घंटा तक लेना पड़े। इसके लिए नदीका हल्का जल सर्वोत्तम होता है। क्योंकि यह जमे हुए मलको जल्दीसे ढीला कर देता है। अगर भारी जल मिले तो व्यवहार करनेके पूर्व उसे कुछ देर पड़ा रहने देना चाहिये।

इन स्नानोंके शुरू करते ही अद्भुत फल होता है। दस्त ठीक आने लगता है। कभी कभी तो ऊपर वर्णन किये अनुसार बंधा हुआ, मलद्वारमें बिलकुल लगा न रहनेवाला मल निकलता है। कारण, इन स्नानोंसे आंतोंका संचित सड़नेवाला पदार्थ बाहर निकल जाता है। लेकिन शरीरकी पूरी सफाई न हो लेनेतक नया विकारी द्रव्य जमता जाता है। इसलिए पूर्ण नीरोग होनेतक इस चिकित्साको जारी रखना चाहिए। चिकित्सा कितने दिन करनी चाहिये यह शरीरमें जमे हुए विकारी द्रव्यकी मात्रा तथा स्नानोंके प्रभावपर निर्भर है। हफ्तोंतक और कभी कभी महीनों वा वर्षोंतक करनी पड़ती है। जो मनुष्य जन्मसे ही रोग साथ लाते हैं उनको चिकित्सामें सबसे अधिक समय लगता है। पर उन नवयुवकोंपर जो थोड़े ही दिनोंसे रोगके पंजेमें फँसे हैं इसका असर बहुत ही जल्द होता है। चिकित्सा आरम्भ करने-

पर प्रायः उपर्युक्त ज्वरोंमेंसे कोई एक फूट निकलता है। इससे सफाईका काम बड़ी फुर्तीसे होता है। इनका इलाज भी ठीक उसी ढंगसे करना चाहिए। उस समय विशेषकर त्वचाको शीघ्र काममें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिए। पसीना निकलते ही ज्वरका तत्काल लोप होने लगता है। हम कह आये हैं कि ज्वर पुनः स्वास्थ्य लाभकी चेष्टा है। विकारी द्रव्योंका बाहर निकालना इसका उद्देश्य है। विकारी द्रव्य बाहर निकलनेपर भीतरी सड़न और साथ ही गर्मी दूर हो जाती है। हठी और बेसमझ मनुष्य बिना आजमाये कह बैठते हैं कि वाष्प-स्नानसे गर्मी बढ़ती है। मैं कहता हूं, एक बार आजमाकर देखिए तो मालूम हो जायगा कि बात बिलकुल उल्टी है। लेकिन इस बातपर फिर ध्यान दिलानेकी आवश्यकता जान पड़ती है कि छोटे बच्चोंकी दशामें पसीना लानेके लिए माताकी गर्मी ही सर्वोत्तम उपाय है। इसलिए माताको अपने शरीरकी गर्मी पहुंचाकर बच्चेकी जीवनरक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक तीव्र रोगमें रोगीको खूब पसीना लाना ही हमारी पहली चेष्टा होनी चाहिए। इस बातपर भी समान रूपसे ध्यान देना चाहिये कि अन्य विकारी द्रव्य निकालनेवाली इन्द्रियां भी अपना काम उचित रूपसे करती रहें। इसलिये ज्वरमें उदरस्नान और मेहनस्नान भी बारंबार देनेकी आवश्यकता पड़ती है।

ज्वरोंमें शायद डिप्थीरिया सबसे भयंकर गिना जाता है। बच्चोंके लिए तो यह कालरूप समझा जाता है। शरीरमें विजातीय द्रव्यके अधिक मात्रामें इकट्ठा हो जानेपर और सिरमें रुकावट पाकर छोटते समय सांसकी नली तथा फेफड़ोंमें विशेष रूपसे जमा हो जानेसे बच्चोंपर डिप्थीरियाका आक्रमण होता है। त्वचाके अपना काम प्रायः बन्द कर देनेपर ही विजातीय द्रव्यका इतना जमाव होना संभव है। इस लक्षणसे सावधान माता-पिता पहलेसे अपने बच्चे पर होने-वाले ज्वरके आक्रमणको जान लेंगे। डिप्थीरिया रोगीके शरीरकी उपमा एक ऐसी बोतलसे दी जा सकती है जिसमें खमीर उठनेवाला तरल पदार्थ भरा हो; उसमें उफान शुरू होनेसे विकारी द्रव्य बोतलके

सिरेकी ओर जाना चाहता है, क्योंकि बोतलकी चहारदीवारी उसे बाहर नहीं जाने देती। यही हालत डिप्थीरिया रोगीकी भी होती है। डिप्थोरियाके साथ ही प्रायः लालज्वर भी हो जाता है, क्योंकि उबाल सारे शरीरमें फैल जाता है। ऐसा होना लाभदायक है, इससे कूड़ा बाहर निकलनेमें त्वचासे भी सहायता मिलती है। ऊपर लिखे अनुसार पसीना लानेका उपाय जरूर करना चाहिए। संभव है बच्चेको पसीना लानेके लिए माताको घंटों उसके साथ बिस्तरोंमें लेटने-की जरूरत पड़े। यह न हो तो वाष्पस्नान देना चाहिए। उदर-स्नान या मेहनस्नान भी बारी बारीसे नीरोग न होनेतक देना चाहिए। डिप्थोरियामें प्रायः रोगी दम घुटकर मर भी जाते हैं। हमें इसे रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इस भयका कारण जीभपर जमी हुई सफेदी तो है ही, पर गलेकी जलनसे उत्पन्न हुई सूजन इससे भी बड़ा कारण है। इस जलनको बन्द कर सकनेसे रोगी जरूर बच जायगा। जीभपर जमी हुई सफेदी दूर करनेके लिये रोगीको मुंहमें ठंडा पानी भर रखना चाहिए। जब पानी मुंहमें गर्म हो जाय तब फिर ठंडा पानी भर लेना चाहिए। यहां तक कि सफेदी बिलकुल दूर होने तक यह उपाय जारी रखना चाहिए। इससे रोगीको प्रत्यक्ष आराम मालूम होगा। रोगीको इस तरह लेटना चाहिए कि पानी मुंहके भीतरतक पहुंच सके और सफेदी अच्छी तरह धुलती रहे।

यह चिकित्सा बहुत छोटे बच्चोंकी नहीं हो सकती। उनके लिए मेहन-स्नान काफी होगा। उसका ऐसा अच्छा असर होता है कि एक ही स्नानके बाद सारी सफेदी प्रायः लोप हो जाती है। वर्षाका जल व्यवहार करनेसे तो शीघ्र फल प्राप्त करनेमें बहुत ही कम सन्देह है। इसलिये ऐसा जल प्राप्त करनेमें कोई उपाय उठा न रखना चाहिए। उसके अभावमें नदीका जल लेना चाहिए। इसके लानेमें थोड़ा परिश्रम पड़े तब भी कोई हर्ज नहीं; पाकेटसे कुछ पैसे तो खर्च होते ही नहीं। लोग डाक्टरोंके दरवाजे दरवाजे ठोकर खानेमें भी तो

घंटों समय बरबाद करते हैं ! कूएं या नलके जलको व्यवहार करनेके पूर्व खुली वायु और सम्भव हो तो धूपमें कई घंटे पड़ा रहने देना चाहिए ।

उपर्युक्त चिकित्सा इतनी बार आजमाई जा चुकी है कि इसकी सत्यता सन्देहकी सीमासे बाहर है । फिर भी हम इस विषयको अच्छी तरह समझानेके लिए यहां कुछ उदाहरण देते हैं ।

(१) एक नौ सालके लड़केपर लालज्वर और डिप्थीरियाका आक्रमण हुआ । बेतकी बुनी कुर्सीपर लिटाकर उसके शरीरमें वाष्पस्नान द्वारा खूब पसीना लाया गया । फिर ठंडक पहुंचानेके लिए उदरस्नान (हिपबाथ) कराया गया । ठंडे स्नानके प्रभावसे सिरकी गर्मी तथा सांस लेनेमें तकलीफकी शिकायत दूर होनेपर बिस्तरेमें लिटाकर ढक दिया गया । इससे फिर उसे स्वाभाविक पसीना आ गया और वाष्पस्नान न देने पड़े । पर ठंडे स्नान बार बार देने पड़े । ज्योंही लड़का बिस्तरेमें लिटाया गया, उसके मुंहमें ठंडा हल्का जल भर दिया गया । इससे उबालके कारण गलेमें जमी हुई कड़ी तह शीघ्र दूर हो गई । एक घंटा भी न लगा होगा; गलेकी जलन भी शीघ्र ही शांत होकर रोगी चंगा हो गया । पांच दिनमें तो बिलकुल नीरोग हो गया । फिर कोई गड़बड़ नहीं हुई ।

(२) एक बीस वर्षका नवयुवक तेरह वर्षकी उम्रमें मानसिक विकारोंसे ग्रस्त था, बड़े बड़े तजर्बेकार डाक्टरोंने असाध्य कहकर उसका इलाज छोड़ दिया था । उसका विकार निस्सन्देह पैतृक था । विकारी द्रव्य उसके शरीरमें इस तरह भरे हुए थे कि शरीरकी आकृति बिगड़ गई थी । सिर आगेकी ओर झुक गया था, कमर टेढ़ी हो गई थी, स्पर्श करनेपर हाथ पैर सदा ठंडे जान पड़ते थे । त्वचाने अपना काम प्रायः बन्द कर दिया था । पाचनशक्ति बहुत खराब हो गई थी । शरीरमें सदा भीतरी ज्वर बना रहता था, बाहर उसका कोप न होता था । इसकी चिकित्सा खूब अच्छी तरह की गई— भोजन सादा और अनुत्तेजक दिया गया—सवेरे दूध और चोकर-

बार आटेकी रोटी, दोपहरको साग और उबाले हुए फल, शामको चोकरदार आटेकी रोटी और फल। आरम्भमें त्वचाका काम ठीक करानेके लिये उसे हर हफ्ते आगे परिशिष्टमें वर्णन किये हुए खटोलेपर तीन-तीन, चार-चार बाष्पस्नान कराये गये। रोज तीन ठंडे स्नान भी कराये गये जो पहले बीस मिनिटके और बादको आध घन्टेके कर दिये गये थे। हर स्नानके बाद बाहर खुली हवामें घूमने दिया जाता था। इस चिकित्सासे थोड़े ही दिनमें हाजमा कुछ सुधरा और चार सप्ताह बाद अपने आप कुछ पसीना आने लगा। आकृतिमें फर्क पड़ने लगा। धीरे धीरे उसके मनका संकुचितपना दूर होने लगा, शान्ति तथा सोचनेकी शक्ति आने लगी। नौ सप्ताहकी चिकित्साके बाद वह कुछ काम सीखने लायक हो गया। इतने दिनोंमें उसका वजन पांच सेर बढ़ गया था। इस उदाहरणसे यह महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है कि मानसिक विकारोंका कारण भी शारीरिक विकार ही है। शरीर स्वस्थ हो जानेपर वे स्वयं लुप्त हो जाते हैं।

(३) एक १२ वर्षकी उम्रके लड़केके दाहिने हाथपर अचानक लकवा मार गया। एक डाक्टरने अपने साधारण नियमानुसार केवल स्थानिक चिकित्सा की, अर्थात् उसने केवल उस हाथको ही रोगी समझा और उतने ही अंशका इलाज किया। नतीजा यह हुआ कि ज्यों ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता गया। अन्तमें बालककी चिकित्सा मेरे सिद्धान्तानुसार की गई। इस लड़केका भी निस्सन्देह सारा शरीर रोगी था; पर विकारी द्रव्य विशेषकर दाहिने भागमें एकत्र हुआ था और दाहिने हाथमें इतनी अधिक मात्रामें इकट्ठा हो गया था कि रक्तसंचार प्रायः बन्द होकर लकवा हो गया था। बच्चेको सख्त कब्जकी शिकायत थी। इसीसे विकारी द्रव्योंने बहुत थोड़े समयमें ही उसपर अपना असर जमा लिया था। चिकित्सा प्रायः उदाहरण नम्बर २ के अनुसार की गई; केवल बाष्प स्नानोंकी उतनी आवश्यकता न पड़ी, क्योंकि शरीरसे पसीना शीघ्र ही आने लगा। यह विशेष उल्लेख योग्य बात है कि लकवा मारे हुए स्थानकी कोई

अलग चिकित्सा न की गई। फिर भी दिन दिन लड़केको आराम होता गया। तीन सप्ताहमें हाथ अच्छी तरह काम करने लायक हो गया। लड़केकी माता, जो नित्य बालकको ये स्नान कराते देखती थी, समझ हो न सकी कि यह जादू सा क्या हो गया।

(४) एक नवयुवक पादरी भयंकर वात रोगसे पीड़ित था। उसे अधिक अध्ययन ही अपनी बीमारीका कारण जान पड़ता था। इससे उसका रोग बढ़ा था, लेकिन मूल कारण उसके शरीरके विकारी द्रव्य थे। रोगीका शरीर टूट गया था, उसे नीरोग होनेकी कोई आशा न रही थी। इतनी खराबीका कारण यह था कि त्वचाने अपना काम प्रायः बन्द कर दिया था। उदाहरण नम्बर २ की भांति इसे भी भीतरी ज्वर सदा सताया करता था। पाचनशक्ति एकदम नष्ट हो गई थी, जो कुछ खाता वह अनपचा शरीरसे बाहर निकल जाता था। उसे उदाहरण नम्बर २ से भी विशेष सादा भोजन दिया गया। बाकी इलाज बिलकुल वैसाही किया गया। पहले ही दिनसे पाचनशक्तिमें सुधार जान पड़ा। फिर कभी कै न हुई। अपने आप तीसरे दिनसे पसीना आने लगा जिसकी कोई आशा ही नहीं की जाती थी। हां, भली भांति पसीना लानेके लिए कुछ वाष्पस्नान अवश्य कराये गये। आठ सप्ताहमें रोगीकी मानसिक तथा शारीरिक स्थिति ऐसी हो गई कि वह अपने काममें लग गया।

(५) दो महीनेके एक शिशुके सिरमें गंजापन हो गया था, सिरसे मवाद सी बहती थी। यह जन्मके कुछ दिन बादही आरम्भ हो गई थी। मलहम लगानेसे दशा और भी खराब हो गई थी। बच्चेके पांव छूनेसे ठंडे जान पड़ते थे, इसलिये उसे अंगीठीके पास रखते और बिस्तरेमें गर्म पानीकी बोतलें रखी जाती थीं। नतीजा यह होता कि बच्चा बहुत बेचैन हो जाता था। इस शुष्क गर्मीका और दूसरा असर हो ही क्या सकता था ? इस उदाहरणमें शुष्क गर्मीके बजाय बच्चेको माताके शरीरकी गर्मी पहुंचानेसे अद्भुत फल हुआ। रातको बच्चा अपनी माताके शरीरकी गर्मीसे गर्म होनेके लिए उसके साथ सुलाया

जाता था। पहली ही रातको पसीना आना आरम्भ हुआ। धीरे धीरे पसीना बढ़ता गया। दिनमें दस वा बारह मिनिटतक एक छोटे बरतनमें ठंडे स्नान कराये जाते थे। इस प्रकारसे बच्चा तीन ही सप्ताहमें बिलकुल नीरोग हो गया और फिर उसका शरीर हृष्ट पुष्ट होता गया।

इन थोड़ेसे उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि उपर्युक्त चिकित्साके अनुसार समस्त रोग आराम हो सकते हैं। कोई रोग, चाहे उसका कोई भी नाम हो इस चिकित्सासे आराम किया जा सकता है। हां, कुछ रोगी ऐसे होते हैं कि जो शरीरकी जीवनशक्तिके बिलकुल नष्ट हो जानेके कारण पूर्ण रूपसे नीरोग नहीं हो सकते।

अब यहां चोट तथा जले हुए घाव इत्यादिके सम्बन्धमें दो शब्द कहना उचित जान पड़ता है। केवल इन्हीं विकारोंकी स्थानीय चिकित्सा करनेकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि ये बाहरी कारणोंसे ही होते हैं। शरीरमें विकारी द्रव्य न होनेपर ऐसी चोटें, घाव आदि बहुत जल्द दूर होते हैं। विकारी द्रव्य हुआ तो देर लगती है और उस दशामें सारे शरीरकी चिकित्सा भी साथ ही साथ करनी पड़ती है। चोट आदिकी चिकित्साके उपायोंके लिये 'नीरोग होनेका नया और सहज उपाय' (The New Science of Healing) नामक पुस्तक देखनी चाहिये। इस पुस्तकमें मेरे समस्त सिद्धान्तों और चिकित्साका विस्तृत वर्णन है। बिना औषध तथा बिना चीरफाड़ीके रोगोंको दूर करनेमें मुझे जो सफलताएं प्राप्त हुई हैं, उन सबका अनुभव इस पुस्तकमें दे दिया गया है। यह पुस्तक प्रायः सब भाषाओंमें छप चुकी है। दो वर्षमें इसकी ६०००० प्रतियां बिकी थीं। २२ सितंबर १९३५

आकृति-विज्ञान

मेरी नई चिकित्सा-विधिसे "आकृति-विज्ञान"का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि दोनोंको अलग अलग नहीं रक्खा जा सकता। जैसे घोड़े बिना सवार और किनारे बिना समुद्रका ध्यान ही नहीं आ सकता उसी प्रकार मेरा यह आकृति-विज्ञान, नीरोग होनेका नया और सहज उपायके सिद्धान्तोंसे पृथक् नहीं हो सकता, न यह विकारी द्रव्यकी उपस्थिति, शरीरके अन्दर उसके परिवर्त्तन तथा उबाल, और उसके कारण शरीरकी आकृतिके परिवर्त्तनसे ही पृथक् हो सकता है। केवल वही मनुष्य इस आकृति-विज्ञानको समझ सकता है जिसने मेरी नई चिकित्सा-विधिके सिद्धान्तोंको समझा है—जो मेरी "नीरोग होनेका नया और सहज उपाय" The New Science of Healing नामक पुस्तकमें विस्तार-पूर्वक वर्णन किये गये हैं। आकृति-विज्ञान The Science of Facial expression शब्द लोगोंको नवीन तथा अद्भुतसा जान पड़ेगा, इसका कारण केवल यही है कि वे इस विषयका बहुत कम ज्ञान रखते हैं। नये उपायसे रोगकी परीक्षाकर उससे सारे शरीरका ज्ञान प्राप्त करनेकी विद्याके लिये मुझे इससे अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिला। पर परीक्षाकी नई विधिका एक नाम रखना जरूरी था और यही नाम रखना ठीक समझा गया। किसी ऐसे विषयका जिसकी "आकृति विज्ञान" की भांति इतनी भिन्न भिन्न शाखाएं हों एक ही ऐसे शब्दमें जिससे नया आदमी तत्काल मतलबको समझ ले, वर्णन करना कठिन काम है। हमें अपनी जिन्दगीमें ऐसे बहुतेरे शब्द मिलते हैं जिनका अर्थ पहले कुछ और जान पड़ता था पर उनका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद और ही जान पड़ने लगा। आकृति-विज्ञान तथा मेरी नई चिकित्सा-

विधिके लाभको समझानेके लिये हमें पुरानी चिकित्साओं तथा उनकी परीक्षा-विधियोंकी ओर ध्यान देना चाहिए।

ऐलोपैथीके अनुसार हजारों रोग और उनकी लाखों दवाइयां हैं। इन असंख्य रोगोंकी परीक्षाके लिये बड़े मूल्यवान् और जटिल यंत्रोंसे काम लिया जाता है, जिनके उपयोगमें कुशल होनेकी शिक्षामें ही कई वर्ष गुजार देने पड़ते हैं। ऐसे पारदर्शक यंत्रोंका आविष्कार किया गया है जिनसे पेटके अन्दरतककी चीजें देख ली जा सकती हैं। फिर भी इसकी परीक्षाविधि अधूरी है। यदि इतना मालूम भी हो गया कि मनुष्य रोगी है तब भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि इन्हें रोगकी असलियतका तो पता ही नहीं रहता। भारी दवाइयां और डाक्टरीके शस्त्र भी रोगको दूर करनेमें अशक्त रहते हैं। रोगके सिर्फ बाहरी रूपमें उनकी सहायतासे कुछ परिवर्त्तन हो सकता है।

आज भी यह संभव है कि यदि भीतरी रोगसे ग्रसित मनुष्य दस डाक्टरोंकी सलाह ले तो दसों दस तरहकी राय देंगे। अगर संयोग-से दोकी राय मिल भी गई तो नुसखे तो ज़रूर ही अलग लिखेंगे। तथापि सबके सब डाक्टर यही कहनेवाले मिलेंगे कि मैंने रोगकी ठीक पहचान की है और मेरा ही नुसखा ठीक है, बाकी सबने भूल की है। परीक्षाकी वर्त्तमान वैज्ञानिक विधिकी उत्पत्ति भी हालहीके जमानेमें हुई है। बहुत दिन नहीं हुए जब डाक्टरोंको किसी अङ्गको ठोककर और कानसे उसकी गति सुनकर परीक्षा करनेका उपाय मालूम न था। मुझे आज भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरोंके वह परीक्षाके ढोंग जो मेरी रुग्ण माताकी खाटके पास हुआ करते थे, याद हैं। हाथकी छड़ीपर ठुड्डीका सहारा लेकर वे लोग पाचनके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किया करते थे और यह पूछ लिया करते थे कि दर्द कहां है। फिर रोगीकी जीभ देखनेका स्वांग होता था। यह तुच्छ बातें ऐसी गम्भीरता और रहस्यपूर्ण भावसे की जाती थीं कि केवल यही स्वांग अनजान आदमीके मनपर उन डाक्टरोंका प्रभाव जमानेके लिये काफी थे। फिर एक नुसखा घसीटा और किस्सा खतम किया।

रोगीको इन नाटकोंसे कुछ लाभ नहीं होता। यदि रोगी अच्छा हो गया तो समझ लीजिए कि वह बिना डाक्टरोंके भी अच्छा हो जाता।

लगभग पचास वर्षसे हम इस ठोक-पीटकी, रोगका नई उत्पन्न परीक्षाविधिकी चर्चा सुनने लगे हैं, जिसे पेरिसके डाक्टरोंने ईजाद किया था और जिसपर बेहद ढोल पीटे गये थे; मानों कोई बड़ा अद्भुत हलचल मचा देनेवाला आविष्कार हो गया हो। लेकिन आज इतने दिनों बाद भी डाक्टर लोग बुद्धिमत्तासे आविष्कार किये हुए यंत्रोंकी सहायता तथा ठोंकपीटकी परीक्षासे भी क्षय या सरतान जैसे भीतरी भयंकर रोगोंको उनके खूब बढ़ जाने और प्रायः असाध्य हो जानेके पहले पहचाननेमें असमर्थ हैं। ऐसे अनेक रोगियोंने मुझसे राय ली है कि जिनके फेफड़े बहुत दिनसे, बुरी तरहसे खराब हो रहे थे, पर जितने ऐलोपैथीके डाक्टरोंको उन्होंने दिखाया, सबने यही राय दी थी कि तुम्हारे फेफड़ोंमें कोई दोष नहीं है, बिलकुल नीरोग है। दूसरे बहुतेरे उदाहरणोंमें चीरफाड़की आवश्यकता बतलाई गई। लेकिन साथ ही डाक्टरसाहब यह भी फरमा देते कि सूजन या फोड़ा अभी पका नहीं है, रोगीको कुछ दिन ठहरना चाहिये, इसके बाद चीरने लायक होगा। इसके पहले कुछ नहीं हो सकता—जरूर ठहरिए और तबतक ठहरिए जबतक कि वह घातक न हो जाय। ऐलोपैथी रोगकी आरम्भिक दशामें उसका कुछ उपाय नहीं कर सकती, क्योंकि उसकी परीक्षाविधि रोगको प्रारम्भिक दशामें पहचाननेमें सर्वथा असमर्थ रहती है। ऐलोपैथी अनेक रोगोंको तो तब पहचानती है जब उनसे शरीरके अङ्ग नष्ट हो जाते हैं या उनकी सूरत बदल जाती है। स्नायुविकारके सम्बन्धमें तो ऐलोपैथीकी परीक्षाविधि निहायत निकम्मी है। उनके पूर्ण रूपसे बढ़ जानेपर ही उनकी पहिचान कर सकती है। जैसे मानसिक विकारोंके बढ़कर विक्षिप्तता न हो जानेतक अथवा भयंकर सिरदर्द आदि रोग न होने लगनेतक बात डाक्टरसाहबके ध्यानमें ही नहीं आती। ऐलोपैथीके डाक्टर इन रोगोंकी आरम्भिक अवस्थासे अभीतक अनजान हैं,

क्योंकि उन्हें रोगोंकी असलियतका ही पता नहीं है। यदि स्नायु-विकारोंको वे पहचान भी लें तो उन्हें दूर करनेमें असमर्थ हैं। कारण, अभीतक वे उनके लिये किसी उपयुक्त औषधकी तलाशमें ही फिर रहे हैं। २४ फेब्रुअ(१९३५-

उदाहरणके लिए, कुछ समय हुआ एक फौजी अफसर मेरे पास चिकित्साके लिये आया। उसके ज्ञानतन्तुओंमें बुरी तरह विकार उपस्थित हो गया था। तथापि जब उसने छुट्टीके लिये दरख्वास्त देनेको डाक्टरका सार्टिफिकेट चाहा तो उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। डाक्टरने बड़े ध्यानसे जांच करनेके बाद कहा कि कहीं रोगका लेश भी नहीं देख पड़ता, सब इन्द्रियां अपना काम ठीक कर रही हैं। तुम्हें सिर्फ बीमारीका भ्रम हो गया है। लेकिन जिस भयङ्कर ज्ञान-तन्तुके विकारसे रोगी कष्ट पा रहा था उसका अनुभव दूसरा कोई नहीं कर सकता था। डाक्टरके कह देनेपर भी कि तुम्हें खाली भ्रम हो गया है उसे विश्वास न आया।

होमियोपैथीका इमारतकी नींव भी ऐलोपैथीकी भांति ही रक्खी गई है। यद्यपि इसमें यह माना जाता है कि दवा बहुत कम मात्रामें देनेसे अधिक लाभ होता है। जैसे जल अपने हल्के रूप अर्थात् भाफ बनकर इञ्जिन आदि चलानेमें समर्थ होता है; यद्यपि अपनी असली दशामें इसमें इतनी शक्ति नहीं होती, इसी तरह होमियोपैथी-ने भी यह आविष्कार किया है कि दवाइयां ऐलोपैथीकी भांति न देकर बहुत कम मात्रामें दी जायं तो उनसे लाभ अधिक और हानि कम होगी। इस कम मात्राके सिद्धान्तके कारण होमियोपैथी ऐलो-पैथीसे श्रेष्ठ है। पर परीक्षाविधिमें यह ऐलोपैथीसे भी गई बीती है, क्योंकि उसीकी तरह यह भी हजारों रोग मानती है और उनकी हर एककी खास खास दवाइयां रखी गई हैं। पर उनका असर तब होता है जब परीक्षाद्वारा रोगको जांच हो जाय। वास्तवमें होमियोपैथी-के अनुसार औषधोंकी मात्राको अधिकाधिक कम करनेकी रीतियां

ऐसी जटिल हो गई है कि जो लोग इसे सीखना चाहते हैं उन्हें मुद्दततक माजपच्ची करनी पड़ती है।

मेस्मेरिजमके सिद्धान्त उन दोनोंसे सहज हैं। मेस्मेरिजममें उन दोनों चिकित्साओंकी अपेक्षा यह एक बड़ी विशेषता है कि यह सम्पूर्ण रोगोंकी एक ही चिकित्सा बताती है जिसे प्राणबल या आत्मबल कहते हैं। इसे रोगोंके नाम तथा उनकी किस्मसे कोई बहस नहीं। सिर्फ अपने शरीरकी बिजली रोगीके शरीरमें डालकर यह चिकित्सा की जाती है। इसलिये मेस्मेरिजम निस्संदेह उन चिकित्सा-विधियोंसे श्रेष्ठतर है। इसका अधूरापन केवल इसी बातमें है कि चिकित्सककी शक्तिका प्रभाव प्रत्येक रोगीपर नहीं पड़ता। प्राय: ऐसा होता है कि मेस्मेरिजम अपनी इच्छाशक्तिके प्रभावसे सैकड़े दस रोगी आराम कर सकता है, शेष नब्बेपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उन दशाओंमें जब कि रोगी शीघ्र ही मेस्मेरिजम करनेवाले-के वशमें हो जाता है तो प्राय: रोग दूर होनेके अद्भुत फल देख पड़ते हैं, क्योंकि इससे शरीरका विजातीय द्रव्य बड़ी मात्रामें शीघ्रता-पूर्वक रोगीके शरीरसे बाहर निकल जाता है।

परीक्षाविधिमें यह ऐलोपैथी और होमियोपैथीसे निश्चय ही श्रेष्ठतर है क्योंकि इसमें रोगोंके भिन्न भिन्न नामोंका बखेड़ा नहीं है; इसलिये भांति भांतिकी दवाइयोंकी खोज और उनसे होनेवाली भूलोंके परिणामसे यह मुक्त है।

प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा अपनी अद्भुत सफलताओंके कारण अन्य चिकित्साविधियोंसे बहुत श्रेष्ठ सिद्ध हो चुकी है। प्राकृतिक रूपसे जीवननिर्वाह और अनेक प्रकारसे जलका प्रयोग यही इस चिकित्साका मूल मंत्र है। समस्त रोगोंपर इसके यही प्रयोग चलते हैं और यही रीति सबसे अधिक स्वाभाविक भी है। यद्यपि ऐलोपैथीको देखते यह इतनी उच्चताको पहुंच चुकी है तथापि यह अपनी परीक्षाविधिमें स्वतन्त्र नहीं है। इस हिसाबसे यह दो

नावों पर सवार है। क्योंकि रोगीको परीक्षाकी सर्वांगपूर्ण और निश्चित रीति न जाननेके कारण इसे यन्त्रोंद्वारा परीक्षा करनेकी भ्रमपूर्ण विधियोंकी सहायता लेनी पड़ती है जो इसके सिद्धान्तोंके बिलकुल विरुद्ध है। इतनी बढ़ी चढ़ी होनेपर भी अपनी पुरानी बहनोंसे इसका साथ नहीं छूटा है, अभीतक इसका मोह उनमें लगा हुआ है। इससे शङ्का होती है कि शनैः शनैः यह कहीं उसी मंडलीमें न जा मिले।

इसकी, चाहे जितनी बाढ़ हो, पर यह स्वतन्त्र, अन्य चिकित्साओंसे सम्बन्धरहित चिकित्साप्रणाली नहीं कही जा सकती है। यद्यपि इसकी चिकित्साविधियोंका देखकर रोगीकी एकताके सिद्धांतकी ओर ध्यान आकर्षित होता है पर फिर भी उसे इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं है। पुरानी भूलभरी और दोषपूर्ण परीक्षाविधिसे जकड़े रहनेके कारण इतनी उन्नति कर लेनेपर भी यह पुरानी भूलोंको अपने साथ लिये हुए है। अभीतक रोगोंके बड़े बड़े आडम्बरपूर्ण शब्दोंवाले वैज्ञानिक नामोंको मानती है और इसलिये चिकित्साका एकमात्र सच्चा प्रयोग स्थानीय रूपसे अर्थात् गलती तरीकेसे करती है।

परीक्षाविधिमें परतन्त्र होनेके कारण इन प्राकृतिक चिकित्साके बहुतेरे चिकित्सक सन्देहकी अवस्थामें अपने रोगियोंसे कहते हैं, "जाइए, पहले किसी अच्छे डाक्टरसे रोगकी जाँच करा आइए कि आपको क्या रोग है, तब हम उसकी चिकित्सा कर देंगे।" ऐसे चिकित्सक रोगीके किसी ऐलोपैथीवालेसे अपने रोगकी पहचान कराकर उनके पास आनेसे बड़े प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि दुबारा उन्हें परीक्षा नहीं करनी पड़ती।

आज धन्यवाद है मेरी इस नई चिकित्साविधि और आकृतिविज्ञानको जिसके कारण हम सब झंझटोंसे पाक हो गये। हम केवल एक ही रोग मानते हैं। हां, रूप उसके अनेक होते हैं, पर मूल सबका एक ही है और सबका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। और

इसी सिद्धान्तके अनुसार इन विश्वचिकित्सक "धूप, प्रकाश, वायु और प्राकृतिक भोजन" के अतिरिक्त अपनी चिकित्सामें हम केवल जलका बहुत सरल रूपमें और प्रयोग करते हैं—हमारे निकाले हुए ठंडे स्नानोंके रूपमें और आवश्यकता जान पड़नेपर वाष्प स्नानके रूपमें। इस आश्चर्य-जनक सरल चिकित्साविधिमें मेरा आकृति-विज्ञान सफलताकी प्रतिज्ञा करता है सबसे पहले मैं यह कह देना चाहता हूं कि मेरी परीक्षाविधिका पुरानी चिकित्साविधियोंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह एक बिलकुल ही नई चीज है और इसी दृष्टिसे देखनेपर इसका पूरा महत्व जान पड़ेगा। यदि कोई पुरानी विधियोंसे इसको एक एक बात मिलाकर इसे सीखना चाहे तो वह आकृतिविज्ञानका प्रयोग करना कभी न सीख सकेगा।

वर्त्तमान प्रचलित चिकित्साविधियां रोगके प्रत्यक्ष प्रकट हो जाने तक कोई उपाय नहीं कर सकतीं, क्योंकि जबतक रोगीको स्वयं उसका ज्ञान न हो जाय तब तक यह उसे देखकर जान ही नहीं सकते। आकृतिविज्ञानकी बदौलत आज हम ऐसी अच्छी स्थितिमें हैं कि निश्चित रूपसे बीमारीकी वृद्धि, उसकी दबी हुई दशा तथा उसकी आरम्भिक अवस्थाको भलीभांति जान सकते हैं। हमें रोगके पूर्णरूपसे बढ़ जाने तक, यहांतक कि वह सब लोगोंकी नजरोंमें आ जाय, ठहरना नहीं पड़ता। रोगके असाध्य हो जानेतक हमें बाट नहीं देखनी पड़ती। अब हमारी ऐसी स्थिति है कि हम जब चाहें निर्भ्रान्तरूपसे रोगकी दशाको जान सकते हैं, अतएव रोगीके स्वयं अनुभव करनेके बहुत पहले ही यह बात हो सकती है। इसलिए हम इच्छा करते ही रोगको दूर करनेके लिए चिकित्सा आरम्भ कर सकते हैं, इन्तजारीमें वक्त खराब करनेकी जरूरत नहीं होती।

इसके सिवा हमें रोगीको यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं रही कि रोग कहां है, रोगके लक्षण क्या हैं; बल्कि स्वयं ही तत्काल निश्चित चिह्नोंसे उन्हें पहचान सकते हैं। अपने कामके लिए हमें वर्त्तमान प्रचलित चिकित्साओंकी भांति बहुमूल्य शस्त्रोंकी आवश्य-

कता नहीं पड़ती, परीक्षाके लिए हमारी आंखें ही यथेष्ट हैं। परीक्षाके ये यन्त्र सदा हमारे साथ रहते हैं, और यह कहना कोई गर्वकी बात न होगी कि यदि मनुष्य इस नवीन विद्याका काफी अभ्यास कर ले तो उसकी आंखें उसे कभी सन्देह या धोखेमें न पड़ने देंगी। इस प्रकार सरल हो जानेसे परीक्षाविधिमें बड़ी महत्वपूर्ण उन्नति हुई है, स्त्रियोंके गुप्त रोगोंकी परीक्षाके लिए तो यह बहुत ही अमूल्य उपाय है। अब इन रोगोंके लिये स्थानीय परीक्षाकी कोई आवश्यकता न रही। अब हम पूर्ण तथा निश्चित रूपसे पेड़ूकी भीतरी दशाको स्थानीय परीक्षाविधिसे जितना संभव है उससे कहीं अधिक अच्छी तरह जान सकते हैं। कहना नहीं होगा कि स्त्रियों तथा इन रोगोंकी लड़कियोंको परीक्षाविधिमें किस प्रकार लज्जाका सामना करना पड़ता था। अब उन्हें उससे निवृत्ति मिल गई है।

यहां सन्देह किया जा सकता है कि जब हम एक ही रोग और उसकी एक ही चिकित्सा मानते हैं तो परीक्षा करना ही व्यर्थ है। ठीक है, हमारे पास किसी ऐसे रोगीके जो अपने रोगका ज्ञान रखता है, आनेपर उसे हमारी परीक्षाविधि सिर्फ रोगका स्थान बदला देती है। आकृतिविज्ञानका अधिक महत्व इस बातमें है कि हम इसकी सहायतासे निश्चित रूपसे शरीरका रोगकी ओर झुकाव जान सकते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य जान सकता है कि उसके शरीरमें रोगका आरम्भ हुआ है या नहीं। केवल एक इसी बातसे यह संभव है कि हम निश्चित रूपसे रोगोंके आक्रमणसे बच सकते हैं और मेरी चिकित्साविधि इस विद्याकी कुंजी है।

आकृति-विज्ञानकी सहायतासे हम अस्वस्थ शरीरकी आकृतिके छोटेसे छोटे परिवर्त्तनको भी तत्काल जान सकते हैं और इस तरह सारे शरीर अथवा उसके किसी अङ्गकी दशाका निश्चित रूपसे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि इन सारे परिवर्त्तनोंकी उत्पत्ति शरीरके एक ही भाग अर्थात् मेदेसे होती है।

"नीरोग होनेका नया और सहज उपाय" (The New

Science of Healing) नामक अपनी पुस्तकमें मैंने रोगोंकी एकताका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, यह दिखलाया है कि प्रत्येक रोग ज्वर है, चाहे दबी हुई दशामें हो अथवा प्रकट दशामें और इस ज्वरके कारण शरीरकी आकृतिमें परिवर्त्तन होते हैं, जिन्हें हम सरलतासे देख सकते हैं। और इसी बातपर मेरे आकृतिविज्ञानकी नींव रक्खी गई है।

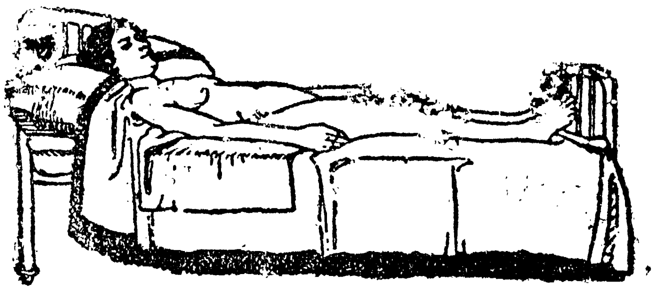
कोई तीव्र रोग प्रकट होनेके पहले कुछ समय तक शरीरमें दबा हुआ रहता है। इसलिये यह बात ध्यानमें भी नहीं आ सकती कि पूर्ण स्वस्थ मनुष्यपर यकायक चेचक, हैजा, पेचिश, इत्यादि रोगोंका आक्रमण हो सकता है। पहलेहीसे इन रोगोंकी ओर झुकाव होनेसे यह रोग होते हैं, हमारे शब्दोंमें कहिए तो रोग तभी संभव है जब पहलेसे शरीरमें विजातीय द्रव्य भरा हो।

रोगकी ओर होनेवाले झुकावका पहले कुछ अनुमान किया जाता था, पर पूर्ण ज्ञान असंभव था। आज निश्चयपूर्वक प्रत्येक दशामें आकृतिविज्ञानकी सहायताद्वारा रोगके झुकावको जान सकते हैं। रोगकी ओरके झुकावसे शरीरकी आकृतिमें होनेवाले परिवर्त्तनोंसे परिणाम निकालना, जो आकृतिविज्ञानका कार्य है, सिद्धान्तरूपमें बतलाना, साबित करना और सिखलाना संभव नहीं है। अभ्याससे ही इसकी शिक्षा हो सकती है।

परिशिष्ट

वाष्पस्नान

स्वास्थ्यके लिये त्वचाका अपना काम नियमित रूपसे करते रहना बहुत ही आवश्यक है। नीरोग दशामें बिना किसी अन्य सहायताके त्वचा अपना काम करती भी है, पर रोगकी दशामें त्वचासे उसका काम करानेके लिये सबसे अच्छा उपाय वाष्प-स्नान है।



बहुत दिनोंतक ग्रन्थकर्त्ता एक ऐसा सीधा सादा खटोला बनानेकी धुनमें रहा कि जो अधिक रोगी मनुष्योंकी दशामें भी प्रत्येक परिवारमें काम आ सके। अन्तमें उसने एक ऐसा खटोला बनाया जिसे टुकड़े टुकड़े करके रक्खा जा सके। समेटकर रखनेपर यह एक मामूली कुर्सीकी जगह रोकता है। इसे काममें लानेके लिए कसी विशेष निपुणता या कौशलकी आवश्यकता नहीं होती।

इसके उपयोगके लिए एक बड़ा कम्बल, कुछ बरतन और एक टबकी आवश्यकता होती है। इससे बड़ा लाभ यह है कि सारे शरीरको अथवा शरीरके किसी विशेष अङ्गको भी भाप दे सकते हैं।

चित्रमें दिखाये अनुसार खटोलेको फैलाकर तीन या चार बरतनोंमें चूल्हेपर पानी गर्म करना चाहिये। पानी छलके नहीं इसलिए बरतनोंको कुछ खाली रखना चाहिए। छोटे बच्चोंके लिये सिर्फ एक ही बरतन काफी होगा।

पानी ज्यों ही उबलने लगे; रोगीको नंगे होकर पहले पीठके बल उस खटोलेपर लेट जाना चाहिए। फिर ऊपरसे एक कम्बल इस तरह डालना चाहिये कि उसके किनारे जमीनसे अच्छी तरह सट जायं जिसमें भाप इधर उधरसे निकल न सके। सिर भी पहले ढक लेना चाहिए। यह हो चुकनेपर, कपड़ेको धीरेसे उठाकर, एक मनुष्यको खोलते हुए पानीका एक बरतन लेटे हुए मनुष्यकी पीठके नीचे और दूसरा पैरोंके नीचे रख देना चाहिए। बरतनोंपर ढकने अवश्य होने चाहिए और इच्छानुसार कम अथवा अधिक उष्णता करनेके लिए उनको कम अथवा अधिक खोल देना चाहिये। कोई दस मिनिट हो जानेपर भाप कम होने लगेगी। तब चूल्हेपर चढ़ा हुआ तीसरा बरतन उठाकर पीठके नीचे रख देना चाहिए और पहले बरतनको उठाकर फिर आगपर चढ़ा देना चाहिए। जब उससे भाप अच्छा तरह निकलने लगे तब पैरोंके नीचेवाले बरतनको भी बदल देना चाहिए। परन्तु बहुधा पैरोंके नीचेके बरतनको बदलना नहीं पड़ता। कोई दस पन्द्रह मिनिटके अनन्तर मनुष्यको पेटके बल लेट जाना चाहिए, जिसमें पेट, पेड़ और छातीपर खूब भाप लगे। यदि अबतक पसीना न निकला होगा तो अब अवश्य निकलेगा और पैर तथा सिर दोनोंसे एक ही साथ निकलने लगेगा। जिनका पसीना शीघ्र नहीं आता उनको सिर ढका रखना चाहिये, परन्तु जिनको शीघ्र आता है, उनके लिये सिर ढकना कोई विशेष आवश्यक बात नहीं है। तथापि पहले थोड़ी देरके लिए उसे अवश्य ढक लेना चाहिये।

पसीनेको पन्द्रह मिनिटसे लेकर आध घंटेतक निकलने देना चाहिए। पसीना निकल आनेपर बरतनोंका बदलना अथवा न बदलना मनुष्यकी इच्छापर अवलम्बित है। शरीरके जिन भागोंमें विकारवान्

पदार्थ अधिक इकट्ठा रहते हैं, उन भागोंमें देरसे पसीना निकलता है। रोगी ऐसे भागोंपर स्वयं देरतक भापका अधिक प्रयोग करना चाहेगा। उसकी यह इच्छा जरूर पूरी होने देनी चाहिए। ऐसा करनेसे ही वाष्पस्नानका पूरा लाभ होता है।

वाष्पस्नानके अनन्तर शीघ्रतापूर्वक ठंडे जलसे थोड़ा स्नान कर लेना चाहिए। इसके बाद उदरस्नान लेना चाहिये। फिर खुली हवामें घूमने जाना चाहिए। पसीना आनेसे शरीरके भीतर किसी प्रकारकी उत्तेजना नहीं होती, केवल त्वचामें गर्मी पैदा हो जाती है। इसलिए किसीको वाष्पस्नानके बाद स्नान लेनेसे डरना न चाहिए। लोहेको आगमें खूब लाल करनेके बाद ठंडे पानीमें डुबोकर तब पीटना शुरू करते हैं जिससे वह भुरभुरा या निकम्मा न हो जाय। यही दशा मनुष्य शरीरकी भी है।

बहुत अधिक बीमारों या छोटे बच्चोंको वाष्पस्नान लेना उचित नहीं है। क्योंकि इस स्नानसे उनके शरीरमें विजातीय द्रव्य इतना ढीला हो जाता है कि उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि उसे इतनी तेजीसे बाहर निकाल सकें। ऐसे रोगियोंको पेड़ूपर पट्टी बांधनी चाहिए। इसे तैयार करनेकी निम्नलिखित रीति है—एक अंगाछेको ठंडे पानीमें भिगोकर अच्छी तरह निचाड़ लेना चाहिये। फिर उसे सारे पेड़ूपर रख देना चाहिए। तब खूब सावधानी और मजबूतीसे एक ऊनी कपड़ेसे ढक देना चाहिए। फिर रोगीको बिस्तरेपर लिटाकर खूब गर्म कपड़ोंसे ढक देना चाहिये जिसमें उसे पसीना आ जाय।

२१२ डिगरी फारेनहाइटतक गर्म करनेके बाद भाप पैदा होती है। भापके बोयालरों जैसी ही भाप इन बरतनोंमें भी पैदा होती है। अन्तर केवल भापके परिमाणमें होता है जो एक बारके प्रयोगसे मालूम हो जायगा। ये बरतन अपने कार्यके लिये यथेष्ट हैं। ग्रन्थकर्त्ताने एक ऐसा बरतन बनाया है जो स्प्रिटकी बत्तीसे गर्म किया जाता है।

वाष्प-स्नानके लिये यदि किसीको पूर्वोक्त प्रकारकी बेंच या चार-

पाई समयपर न मिल सके तो बेतसे बुनी हुई कुरसीसे उसका काम निकल जायगा। कुरसीपर बैठकर नीचे गरम पानीका बरतन रख देना चाहिये और कुरसी समेत शरीरको कम्बलसे ढककर बैठना चाहिये और पांव एक दूसरे बरतनपर जिसमें खौलता हुआ पानी आधी दूरतक भरा हो, दो लकड़ी रखकर उसपर रखना चाहिये। बहुत कमजोर आदमियोंको इस प्रकार स्टीमबाथ लेनेमें बहुत कष्ट हो सकता है।

THE HIP BATH.

उदरस्नान



उदरस्नानके टबमें जिसका चित्र यहां दिया गया है, इतना पानी भरना चाहिये कि जिसमें एक ओर नाभीतक और दूसरी ओर जांघ तक पहुंचे। पानी ६४ से ७७ डिगरी फारेनहाइटका लेना चाहिए। वाष्पस्नानके बाद ६४ डिगरीसे अधिक ठंडा लिया जा सकता है। इससे त्वचामें गर्मी शीघ्र आती है। यह बहुत आवश्यक बात है कि हाथ पांव तथा शरीरका ऊपरी हिस्सा शेष अंगोंके साथ ठंडा न किया जाय। क्योंकि उनमें प्रायः रक्तकी कमी हुआ करती है। यदि आवश्यक जान पड़े तो इन्हें ऊनी कम्बलसे ढक लेना चाहिये।

उदरस्नानके बाद ही शरीरमें गर्मी लानी चाहिए। जिसके लिए सबसे अच्छा यह होगा कि खुली हवामें व्यायाम किया जाय। यदि रोग बढ़ा हुआ है तो बीमारको सावधानीसे बिस्तरेमें ढककर गर्मी

लानी चाहिए। यदि गर्मी देरसे आती जान पड़े तो शरीरके चारों ओर ऊनी कपड़ा लपेटा जा सकता है। स्नान लेनेके बाद शरीरकी मामूली गर्मी लौट आनेतक कुछ खाना न चाहिए। एक दिनमें ऐसे उदरस्नान एकसे तीनतक लिये जा सकते हैं। बहुतसी दशाओंमें उदरस्नानके बदलेमें मेहनस्नान लेना अधिक लाभकारी होगा। यह प्रायः शीघ्र और अधिक परिणामकारक होता है। इससे आंत और गुर्दा अपना काम बड़ी ही तत्परतासे करने लगते हैं। इसमें आवश्यकतासे अधिक उत्तेजनाकी आशङ्का नहीं है। साथ ही इससे शरीरके उन भीतरी भागोंमें जिनमें बुखारकी एक धधकसी बनी रहती है, ठंढक पहुंचती है। इस स्नानको लेते समय रोगीको सर्दी नहीं सताती। क्योंकि शरीरका बहुत ही थोड़ा भाग इसमें ठंडा किया जाता है। बल्कि एक गुलाबी गर्मी जान पड़ती है। मेहनस्नानका विस्तृत वर्णन 'नीरोग होनेका नया और सहज उपाय" में देखिए।

शेष

जिस मनुष्यने अपना खोया हुआ स्वास्थ्यरूपी अमूल्य रत्न फिर पा लिया है और पहले बतलाये लक्षणोंको देखकर जो नित्य अपनी पूर्ण नीरोगताका ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही इस प्राप्त रत्नका मूल्य भलीभांति समझ सकेगा।

शारीरिक और मानसिक शक्ति, परिश्रमके लिए अथक उत्सुकता, बल और तेज जन्मभरके लिए उसके साथी बन जाते हैं। जीवन आनन्द तथा शन्तिमय हो जाता है।

२५ सितंबर १९३५